शिवमूर्ति के कथा साहित्य में लोक संस्कृति का सौन्दर्य और सादगी का शिल्प

डॉ. रानीबाला गौड़,
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी,
डी. ए. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बुलन्दशहर,उ.प्र.
सम्बद्ध चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मनीष कुमार,
शोधार्थी–हिन्दी,
डी. ए. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बुलन्दशहर,उ.प्र.
सम्बद्ध चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

शोध सारांश

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही इस देश में संस्कृति की दो पृथक–पृथक धारायें प्रवाहित हो रही थी. जो निम्नलिखित थीं–

1.सौन्दर्य संस्कृति और 2. लोक संस्कृति। सौन्दर्य संस्कृति से तात्पर्य उस अभिजातवर्ग की संस्कृति से है जो बौद्धिक विकास के पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी। यह वर्ग अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पहुँची हुई थी। यह वर्ग अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पथ–प्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का स्रोत वेद और शास्त्र था।परन्तु लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जान–साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक से प्राप्त करती थी। जिसकी उत्स–भूमि जनता थी। इस संस्कृति के अनुयायीबौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर अवस्थित थे। यदि ऋग्वेद और अथर्ववेद का सुक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाय तो यह पार्थक्य स्पष्ट ही प्रतीत हो जाता है।संस्कृत के अन्त–र्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान पद्मभूषण आचार्य पंव बलदेव उपाध्याय ने इस विषय का गंभीर विवेचन करते हुए अपना अभिमत निम्न प्रकार से प्रकट किया है। लोक संस्कृति सौन्दर्य संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों,अनुष्ठानों तथा क्रिया–कलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहती है। इस दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकाये हैं। यदि अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का दर्पण है। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जन–जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन–जीवन है।

Keywords : *शिवमूर्ति , भाषा, अध्ययन, कथा साहित्य, लोक संस्कृति, ,शिल्प*

भाषा यादृच्छिक संकेत है–विभिन्न भाषाओं के अध्ययन से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि भाषा में जिन ध्वनि–संकेतों का उपयोग किया जाता है, वे पूर्णतया यादृच्छिक (ऐच्छिक) हैं। किसी भी विशेष ध्वनि का किसी विशेष अर्थ से मौलिक या दार्शनिका सम्बन्ध नहीं हैं। ऋग्वेद में यज्ञ–यादृच्छिक विधान पाया जाता है तो अथर्ववेद में अंध–विश्वास,टोना–टोटका,जादू और मंत्र का वर्णन उपलब्ध होता है। इस प्रकार ऋग्वेद में सौन्दर्य तथा संस्कृत जन के विचारों का विवरण मिलता है तो अथर्ववेद में सामान्य जनता के जीवन का चित्रण हुआ है। इस प्रकार ये दोनों वेद दो विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीक हैं। उपनिषद काल में भी ये दोनों संस्कृतियाँ पृथक् रूप में दृष्टिगोचर होती है। वृहदारण्यक, कठोपनिषद तथा अन्य उपनिषदों में यहाँ आत्मा–परमात्मा, जीव

और जगत् आदि का वर्णन है, वे अभिजात संस्कृति के ग्रन्थ हैं। परन्तु जिनमें लोक जीवन का वर्णन है, जिनमें लोक विश्वास तथा लोक रीति–रिवाजों का उल्लेख है उनका संबंध निश्चय ही लोक संस्कृति से है। गृह्य–सूत्रों को यदि लोक संस्कृति का विश्वकोष कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। पालि जातकों लोक संस्कृति का संजीव चित्रण किया गया है। जातक कथाओं में वैवाहिक प्रथमा का उल्लेख करते हुए वर के आवश्यक गुणों की ओर संकेत पाया जाता है। वावेरू जातक के अध्ययन से तत्कालीन व्यापार का पता चलता है। पालि सुत्त निपात में धनिय गोप का जो कथन है उसमें ग्रामीण जीवन की बड़ी ही बाँकी झांकी देखने को मिलती है। धनिय गोप भगवान् इन्द्र को चुनौती देते हुए कहता है कि मेरे घर में गाय है, बैल हैं, मेरा घर सुन्दर है। मेरी स्त्री सुन्दर तथा पतिव्रता है, मैं उसकी कोई बुराई नहीं जानता। मेरे घर में भात पकाया गया है, दूध भी घर में रखा है। नदी के तीर पर मैं सुखपूर्वक निवास करता हूँ। मेरे घर में सदा आग जलती रहती है। अतः ए भगवान् ! यदि तुम वर्षा करना चाहते हो तो वर्षा करो।

पूर्वोक्त इन पाँच गाथाओं के सम्यक् अनुशीलन से पता चलता है कि बौद्ध युग में ग्रामीण जीवन कितना सुखी तथा समृद्ध था। किसान का बर सुख और समृद्धि का आवास था और वह किस प्रकार सुखी जीवन व्यतीत करता था। ग्रामीण लोक संस्कृति का इतना सुन्दर तथा सजीव वर्णन अन्यत्र मिलना कठिन है। यदि कवि वाल्मीकि के आदि काव्य में अणित सुग्रीव और जाम्बवा–जो बन्दरों और भालुओं के राजा थे–उन आदिम जातियों के नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आज भी इस विशाल देश में लाखों की संख्या में विद्यमान हैं। उस समय शिष्ट जनता तथा साधारण जनता की भाषा में भी अन्तर था। हनुमान जब लंका में अशोक बाटिका में बैठी हुई सीता से मिलने के लिए जाते हैं तब वे अपने मन में सोचने लगते हैं कि यदि मैं शिष्ट लोगों की भाषा–संस्कृतां वाचं–का प्रयोग करने लगूंगा तो सीता मुझे रावण समझ कर डर जायेगी। हनुमान कहते हैं कि

यदि वाचं प्रदास्यामि, द्विजाति रिव संस्कृताम्

रावणं मन्यमानमां, सीता भीता भविष्यति।।

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि सामायण के युग में शिष्ट तथा साधारण लोग पृथक–पृथक् भाषाओं का प्रयोग करते थे।

महाकवि कालिदास के काल में भी शिष्ट जनों तथा सामान्य मनुष्यों की भाषा पृथक् थी। महाकवि ने लिखा है कि शिव और पार्वती के विवाह में सरस्वती ने दो प्रकार की भाषा–द्विधा विभक्त न च वाङगमयेन। में वर और वधू की प्रशंसा की। संस्कार से पवित्र भाषा–संस्कृत में तो वर–शिव की स्तुति की तथा सरलता से समझने योग्य भाषा–प्राकृत में पार्वती की प्रशांसा की।

द्विधा विभक्त न च वाङगमयेन;

सरस्वती तन्मिथुनं नु नाव।

संस्कार पूतेन गिरा वरेण्यं;

वधूं सुखग्राह्म निवन्धनेन।।

संस्कृत के नाटकों में श्रेष्ठ पात्रों के लिए संस्कृत भाषा का व्यवहार किया गया है तथा चेरी, दासी एवं इतर पात्र विभिन्न प्रकार की प्राकृत बोलते पाये जाते हैं। इससे ज्ञात होता है शिष्ट तथा सामान्य जनों के लिए व्यवहार की भाषायें पृथक्–पृथक् थीं।

संस्कृत के महाकवियों तथा नाटककारों की कृतियों में लोक संस्कृति का जो विराट और भव्य रूप दृष्टिगोचार होता है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शिष्ट संस्कृति तथा लोक संस्कृति का समान रूप से बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। मेघदूत में यहाँ यक्ष के घर की वापी (तल्लैया(का कालिदास ने "वापी चास्मिन् मरकत शिलाबद्ध

सोपान मार्गा लिखकर उच्च वर्ग के वैभव का वर्णन किया है, वहाँ रघुवंश में अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्होने लोक संस्कृति का भी मनोरम चित्रण किया है। ईख खेत की छाया में बैठ कर धान के खेत की रक्षा करने वाली स्त्रियों का वर्णन करना ये नहीं भूले हैं। महाकवि का कथन हैं।

"इक्षुच्छाया निणादिन्यः
तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमार कथोद्घातं,
शालिगोप्यो जगुर्यशः।।"[8]

इस प्रकार वैदिक काल से मध्यकाल तक लोक संस्कृति की पृथक धारा प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है। कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि आदिकाल से ही लोक संस्कृति की स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान थी जिसका स्रोत आज भी आजस्र रूप से अक्षुण्ण दिखाई पड़ता है।

सादगी का शिल्प

शिल्प विज्ञान अंग्रेजी के स्टाइलिस्टिक्स (जलसपेजपबे) का हिन्दी पर्याय है। शिल्प विज्ञान एक अपेक्षाकृत नवीन आलोचना–प्रणाली है, जो रचना का पूर्वाग्रहहीन, वस्तुनिष्ठ व्यवस्थित भाषायी विश्लेषण कर उसके मर्म को उजागर करने का दावा करती है। इसका आविर्भाव–क्षेत्र भाषा–विज्ञान और कार्य–क्षेत्र साहित्य है। भाषाविज्ञान, भाषा का विश्लेषण–भर करता है। जबकि शिल्प आगे और गहरे जाकर साहित्य के मार्मिक कथ्य का पड़ताल का दावा करता है।

शिल्प विज्ञान के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने कहा है कि शिल्प विज्ञान भी साहित्य को समझाने–समझाने की एक दृष्टि है जो शिल्प सादगी के साक्ष्य पर एक ओर साहित्यिक कृति की संरचना (स्ट्रक्चर) और गठन (टेक्सचर) पर प्रकाश डालती है और दूसरी ओर कृति का विश्लेषण करते हुए उसमें अंतर्निहित साहित्यिकता का उद्घाटन करती है। वस्तुतः शिल्प सादगी विज्ञान भाषा के रास्ते चलकर काव्यकृति के प्रकाशमान अंतर्जगत में प्रवेश करने की विधि का आलोचनाशास्त्र है। इस तरह शिल्प विज्ञान मूलतः भाषा विज्ञान की शाखा है जो साहित्य की समीक्षा में भाषा विश्लेषण के महत्व को रेखांकित करती है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शिल्प संबंधी विवेचन के सूत्र अरस्तू के काव्यशास्त्र में मिल जाते हैं किंतु आधुनिक शिल्प विज्ञान की प्रतिष्ठा बीसवीं सदी के आरंभ में प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी सस्यूर (थ्मतकपदंदक कम ैनेनतम, 1857–1913)को स्थापनाओं से आरंभ होती है। नयी समीक्षा की भांति ही शिल्प विज्ञान भी कृति को स्वायत्त मानता है। इस पद्धति में भाषा के सभी अभिव्यंजक उपादानों–ध्वनि, विज्ञान, छंद शास्त्र, पद–विज्ञान, वाक्य–विज्ञान, शब्द शास्त्र का समावेश किया गया है। जे.ए.कुडुन के शब्दों में–ÞIt is an Analytical Science which covers all the eÛpressive aspects of language phonology] morphology] syntaÛ and leÛicology&" नयी समीक्षा और शिल्प विज्ञान में अंतर यह है कि शिल्प विज्ञान, भाषा विज्ञान का पूरा–पूरा आधार ग्रहण करके विश्लेषण में प्रवृत्त होता है जबकि नयी समीक्षा ऐसा नहीं करती। उसमें विसंगति, विडंबना, अनेकार्थता, संकेतार्थ, संतुनल आदि जिन औजारों का प्रयोग किया जाता है वे भाषाविज्ञान के औजार नहीं हैं। उनका संबंध काव्य न्याय (Logic of Poetry) से हैं।

वस्तुतः भाषा का प्रयोग बाह्म जगत संबंधी सामान्य सूचनाएँ देने के लिए होता है, जबकि साहित्य की भाषा में प्रकट अर्थ के अतिरिक्त किसी आभ्यंतर अर्थ या आशय के उद्घाटन की क्षमता भी होनी चाहिए। जहां वह भाषा मात्र सामान्य सूचना देती प्रतीत होती है वहां भी उसमें अनेक अन्य अर्थ छिपे होते हैं। सादगी का शिल्प वैज्ञानिक समीक्षा यह देखती है

कि रचनाकार की भाषा उस आभ्यंतर अर्थ का उद्घाटन करने में समक्ष है या नहीं, और वह यह कार्य किस तरह संपन्न कर रही है।

इस तरह शिल्प वैज्ञानिक समीक्षा साहित्य को सामान्य या के रूप में नहीं, बल्कि विशिष्ट अभिव्यक्ति साहित्य (गद्य, पद्य आदि) के रूप में ग्रहण करती है जिसमें भाव और रचनाकार की जीवन दृष्टि को भी नजर में रखना जरूरी होता है। समीक्षक के लिए आवश्यक होता है कि वह भाषा के माध्यम से उस कथ्य और जीवन दृष्टि तक भी पहुँचे। समीक्षक को भाषा विज्ञान तथा शिल्प विज्ञान ही नहीं, साहित्यशास्त्र का भी ज्ञान होना चाहिए क्योंकि कृति के अर्थ तक पहुचंने के लिए यह देख पाने के लिए कि शिल्प के उपकरणों का सहो और सार्थक प्रयोग हुआ है या नहीं, उसे साहित्यशास्त्र संबंधी उपकरणों से भी अपना संदर्भ जोड़ना होगा। उदाहरणार्थ–कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय/वा खाये बौराय नर या पाये बोराय में कनक शब्द की द्वयर्थकता, यमक अलंकार के प्रयोग, और दोहराने की प्रक्रिया के भित्र अर्थों पर में विचार न किया जाए तो इसका भाषिक विश्लेषण अधूरा ना ही रहेगा। इस प्रकार अलंकार का प्रयोग भी शिल्प का कही अंग है। इसे देखते हुए हम कह सकते हैं कि सादगी का शिल्प विज्ञान में भाषा विज्ञान तथा साहित्यशास्त्र का संगम न हो गया है। इनमें से एक के बिना भी शिल्प वैज्ञानिक समीक्षा अधूरी है।

शिवमूर्ति का कथा साहित्य कई साहितियक धाराओं से अन्तःसम्बद्ध हैं। पारम्परिक आंचलिक कथा साहित्य, दलित लेखन, अमरीकी डर्टी रियलिज्म और अफ्रीकी अमेरिकी ब्लैक साहित्य से। डर्टी रियलिज्म वास्तव में यथार्थवाद का ही एक उपवर्ग और साहितियक मिनिमलिज्म का एक प्रभेद है। उस पीढ़ी के कुछ लेखकों के चिन्हित करते हुए श्ग्रान्टा के सम्पादक बिल ब्रफोर्ड ने उनके लेखन को 'बेलिसाइड' (पेड की भूख का लेखन) बताते हुए उसकी कुछ विशेषताएं निर्दिष्ट की थीं– कामेडी की छोर छूते हुए व्यंग्य, अनलंकृत किन्तु करुणा पर बल देती हुई भाषा, सिथतियों के विवरण और उनके प्रति आत्मीयता की एक प्रच्छन्न धारा। शिवमूर्ति की कहानियां अकालदण्ड, कसाईबाड़ा तथा भरतनाटयम मुझे इन्ही विशेषताओं से भरपूर लगती हैं। श्भरतनाट्यमश के उस बेरोजगार युवक के बारे में उसके पिता का वह भयावह कथन किसे याद नहीं रहेगा–साला चलता कैसे है, शोहदों की तरह। चलता है तो चलता है, साथ में सारी देंह क्यों ऐंठे डालता है। दरिद्रता के लक्षण हैं ए, घोर दरिद्रता के। और देखता कैसे है, शनिचरहा। इसकी पुतली पर शनीचर वास करता है। सोने पर नजर डालेगा तो मिट्टी कर देगा।

इस युवक का वृतान्त हमें चार्ल्स ब्रकोवस्की के उपन्यास फैक्टोटम के नायक की याद दिलाता है। इस सन्दर्भ में मैं रेमंड कार्वर का नाम लेना चाहती हूं जिन्हे श्मिनिमलिज्म का उस्ताद माना जाता है। निचले दर्जे के मजदूर पात्रों को चित्रित करते हुए वे उन्हें ऐसे वाक्य दे डालते थे जो उनके पाठकों पर अमित छाप छोड़ जाते हैं रु डोन्ट कम्पलेन, डोन्ट एक्सप्लेन (फरियाद मत करना। सफाई मत देना।) या–वी न्यू अवर दिन गिने चुने हैं। और हम अपने जीवन को उलझा चुके हैं) अपने कथा साहित्य में शिवमूर्ति ऐसी ही कुछ फाउल्ड अप लाइब्ज लाया करते है जो अपने उलझे हुए जीवन में परिवर्तन चाहते हैं या प्रतिशोध।

शिवमूर्ति जमीन से जुड़े रचनाकार हैं। जनजीवन से जुड़े होने के कारण उनके पास व्यापक जीवन अनुभव हैं। इस कारण उनकी रचनाओं में हमें हमारे समाज का बदलता हुआ चेहरा दिखायी देता है। अगर हमारे समय और समाज को समझना है तो शिवमूर्ति जी इसके लिए आवश्यक कहानीकार हैं। शिवमूर्ति का दर्जा काफी ऊंचा है। वे शीर्ष रचनाकारों में से एक हैं।

हिन्दी साहित्य उन्हें उसी रूप में याद रखेगा जैसे कि शिवमूर्ति की 'तिरिया चरित्तर' पढ़ कर शेक्सपियर की याद आती है। शिवमूर्ति की कहानियों की जो बनावट है वह भी शेक्सपीयर जैसी है। उनके अंदर क्लासिक हाइट है जो ग्रीक नाटकों में होती है। उन्होंने कम लिखा और महान लिखा।

संदर्भ ग्रन्थ

1. मेरे साक्षात्कार, शिवमूर्ति, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2013
2. स्वातंत्र्योतर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, विवेकी राय (लोकभारती प्रकाशन)
3. सृजन का रसायन, शिवमूर्ति, रजाकमल प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2014
4. कथाकार शिवमूर्ति, कृष्ण कुमार श्रीवास्तव, मानव प्रकाशन, संस्करण 2017
5. ग्रामीण यथार्थ और शिवमूर्ति की कहानियाँ, प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन
6. शिवमूर्ति दृ केशर कस्तूरी पृ. 122
7. रामचन्द्र तिवारी दृ हिन्दी गद्य साहित्यए पृ. 409 – 410
8. वागर्थ पत्रिका, जून 2014 पृ. 24
9. मंच पत्रिका, शिवमूर्ति विशेषांक (जनवरी, मार्च 2011), पृ. 43